iLrkouk

1970 और 1980 के दशकों में न केवल प्रखर महिला आंदोलनों को जन्म देने वाली नारीवाद की 'दूसरी लहर' देखने में आई, बल्कि इस दौरान समकालीन महिला आंदोलन की शुरूआत भी हुई और वह सामाजिक सुधार के पिछले दौर से अलग हट कर अब जेंडर, हिंसा, नारीवाद और कानून पर ध्यान केंद्रित करने लगा। आपात्काल, अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और सीएसडब्ल्यूआई (भारत में महिलाओं की संस्थिति पर समिति) की रिपोर्ट की तूफ़ानी पृष्ठभूमि ने नए स्वायत्त महिला समूहों को जन्म दिया जिन्होंने महिला सक्रियतावाद में ताजी शक्ति और संकल्प का संचार किया। महिलाओं के खिलाफ हिंसा लामबंदियों के जुटने का बिंदु बन गई। ये लामबंदियां बलात्कारों, दहेज और दहेज मृत्युओं के खिलाफ आयोजित की गई थीं। सड़कों पर प्रतिरोधों का विस्फोट–सा हो गया। हजारों लोग जन कार्रवाईयों में शामिल हुए और उन्होंने नीति–निर्माताओं को विचार करने के लिए मजबूर कर संचार माध्यमों का ध्यान आकर्षित किया। ऐसा लगा कि जैसे उबलता हुआ आक्रोश फूट पड़ा है और महिलाएं राष्ट्रीय संवाद में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हुए एक बड़ा कदम उठाने के लिए तैयार हैं। इसकी शुरूआत हुई महाराष्ट्र के चंद्रपुर जिले के देसाई गंज थाने के परिसर में दो पुलिस वालों द्वारा एक 16 वर्षीय आदिवासी लड़की मथुरा के बलात्कार और फिर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस पर अस्वीकार्य फैसला सुनाने से। सर्वोच्च न्यायालय ने इस दलील के साथ दोषियों को निर्दोष ठहराया कि वह लड़की ''आदतन यौन संपर्क करती थी'' और उसका आचरण ''अनैतिक था''। इसे लेकर गुस्से से भरे महिला संगठन एकजुट होकर सड़कों पर उतर आये। उनकी मांग यह थी कि प्रमाण सिद्ध करने का काम अभियोग पक्ष का होना चाहिए, न कि बचाव पक्ष का। इस बढ़ते दबाव के चलते सरकार ने अधूरे मन से कानून में सुधार किया, जिसके फलस्वरूप हवालात में बलात्कार के मामलों में पहली मांगता और दूसरी मांग को अस्वीकार करने का प्रावधान शामिल किया गया। इससे "शर्म और सम्मान को लेकर होने वाली पारंपरिक परिचर्चाओं में कुवांरेपन और शुचिता जैसी पारंपरिक मान्यताओं का बोलबाला हो गया।" (शिल्पा फड़के, ईपीडब्ल्यू, 25 अक्टूबर, 2003)।

दहेज और दहेज हत्याओं/मृत्युओं ने सक्रियतावाद (एक्टिविज्म) की गुणवत्ता और चरित्र को ही बदल डाला। घरों की चारदिवारी में हो रहे अत्याचारों, मृत्युओं आदि को समाज के सामने लगाया गया। इसके फलस्वरूप दहेज विरोधी चेतना मंच का गठन किया गया और अनेक महिला संस्थाएं अस्तित्व में आईं। दिल्ली के स्त्रीवादी आंदोलन में दहेज का मुद्दा उठाने वाली पहली संस्था – महिला दक्षता समिति थी और स्त्री संघर्ष ने घरेलू शब्द बना दिया। (राधा कुमार, दि हिस्ट्री ऑफ डुइंग)।

दजेह–विरोधी आंदोलन में विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं के लोग शामिल थेः ऐसे पुरुषों से लेकर जो अपनी पत्नियों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे, स्त्री संगठन जैसे पूंजीवाद–विरोधी संगठनों और ''पितृ–सत्ता" विरोधी संठनों तक जो दहेज का विरोध तो करते

थे, पर इसे विवाह–संस्था के नारीवादी आलोचकों के साथ नहीं जोड़ते थे। श्रीमती बसु का कहना है कि, ''शायद पहचान के ये बिंदु यह स्पष्ट करते हैं कि क्यों यह हाल के महिला आंदोलन के सर्वाधिक प्रमुख पहलुओं में से एक हैः इसमें अर्थव्यवस्था, विवाह और ''संस्कृति'', तथा महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के क्षेत्र शामिल हैं।" (दहेज और उत्तराधिकार)।

1980 के दशक में दहेज के विरुद्ध प्रतिरोधों ने अपारंपरिक रूप धारण कियेः प्रतिरोध करने वालों ने उत्पीड़कों का सीधे–सीधे सामना किया और उन्हें समुदाय के भीतर शर्मिंदा किया। इस तूफानी दौर का वर्णन करते हुए मधु कीश्वर ने लिखा, "हमारे कार्य ने स्वतः ही ऐसा रूप ले लिया कि हम हत्या की शिकार हुई या मृत महिला के घर के बाहर जा कर प्रदर्शन करते और परिवार को उत्पीड़ित करने वाले या महिला को आत्महत्या के लिए मजबूर करने वाले परिवार के सामाजिक बहिष्कार की मांग करते थे। ऐसा ही प्रदर्शन फिर स्थानीय थाने पर किया जाता और या तो पुलिस की मिलीभगत का विरोध किया जाता या पुलिस से अपराधियों को पकड़ने के लिए उपयुक्त और तुरंत कदम उठाने की मांग की जाती थी।" (भारत में दहेज की संस्कृति और घरेलू हिंसा का मुकाबला करने की रणनीतियां, 2005)। उन्हें पड़ौसियों की ओर से जबर्दस्त प्रतिक्रिया प्राप्त होती थी। कीश्वर का कहना है, ''हमारे प्रदर्शनों को शायद ही कभी विरोध का सामना करना पड़ा हो। उस स्थिति में भी जब हम बिना पूर्व सूचना के पड़ौस के लोगों के सामने जाते थे तब भी शायद ही कभी ऐसा हुआ हो। अधिकतर मामलों में पड़ौसी पुरुष और महिलाएं अपने आप ही बहिष्कार की मांग कर समर्थन करते हुए हमारे साथ शामिल हो जाते थे। हत्या से संबंधित घरों के या थानों के बाहर प्रदर्शन करने से हमें रोकने की बजाय पुलिस तक चुपचाप देखती रहती थी।" उनका कहना है कि एक मौके पर – जब *मानुषी* की टीम संदिग्ध दहेज हत्या के एक मामले की जांच के लिए गई तब एक बार ही व्यक्तिगत रूप से उन्हें पड़ौसियों के विरोध का सामना करना पड़ा। अपराधी परिवार के घर के बाहर प्रदर्शन की रणनीति इस कठोर अहसास का नतीजा थी कि न्यायालयों या पुलिस ने न्याय प्राप्त करना एक कष्टपूर्ण और अक्सर व्यर्थ प्रक्रिया है। दूसरी ओर समुदाय के भीतर सम्मान खोने का भय और शर्म पैदा करने की रणनीति कानून द्वारा अभियुक्त बनाने से ज्यादा प्रभावकारी है। इतिहास के दौरान समुदाय अपराधियों को दण्डित करने के अपने तरीके अपनाते रहे हैं। आज भी पत्नी की पिटाई करने वालों या शराबखोरी करने वालों को मुंह काला करके गांव में घुमाये जाने की घटनाओं के समाचार हमें मिलते हैं।

*

जब दिल्ली की सड़कें दहेज–विरोधी नारों से गूंजती थीं और महिलाएं दहेज उत्पीड़न के अपराधी परिवारों के घरों के बाहर धरनों पर बैठती थीं, तबसे आज दो दशक होने को आए हैं। आज सड़कें शांत पड़ी हैं, पर हिंसा समाप्त नहीं हुई, दहेज की मांगें भी कम नहीं हुई हैं, उलटे उदारीकरण और उपभोक्तावाद के बढ़ने से दहेज के सामानों की सूचियां लंबी होती जा रही हैं। ब्लैक एंड ह्वाइट टेलिविजन की जगह रंगीन टेलिविजन और वीडीओ ने, मिक्सियों और

फूड प्रोसेसरों की जगह अधिक परिष्कृत यंत्रों ने और मारुति 800 की जगह दूसरी महंगी कारों ने ले ली है। जहां बढ़ते हुए उपभोक्तावाद ने दहेज को एक भिन्न आयाम प्रदान किया है, वहां दहेज के बने रहने का कारण पहले से चली आई संस्कृति को मानना एकतरफा ढंग से सोचना होगा। तथ्य यह है कि दहेज महिला आंदोलन के भीतर हुई चर्चाओं का एक जटिल और अत्यंत विवादपूर्ण विषय रहा है। विभिन्न क्षेत्र के लोगों – कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शोधकर्ताओं – ने विभिन्न दृष्टिकोणों से इस प्रथा के जन्म और अस्तित्व पर विचार किया है जिसके फलस्वरूप संस्कृति, अर्थशास्त्र, परंपरा, जाति और कर्मकाण्डीय श्रेष्ठता से बुनी हुई एक बहुस्तरीय जटिल रचना तैयार हुई है। पर इनमें से हर पहलू दूसरे से जुड़ा हुआ है और इस प्रथा की जटिलताओं की ओर इशारा करता है। साथ ही ये दहेज से लड़ने की एकमात्र युक्ति के रूप में कानूनी रास्ता अपनाने पर भी प्रश्नचिन्ह लगाते हैं।

1961 के बाद दहेज प्रतिबंध कानून में किये गये संशोधनों और इस कानून को अधिकाधिक दण्डकारी बनाने के प्रयासों के बावजूद दहेज और दहेज संबंधी हिंसा अनियंत्रित रूप से जारी है। दहेज संबंधी हत्याओं की अनुमानित संख्या 1980 के दशक के मध्य में 400 प्रति वर्ष से बढ़कर 1990 के दशक में लगभग 5,800 पर पहुंच गई। *विमोचना* द्वारा तैयार एक अवधारणा टिप्पणी के अनुसार, ''स्थिति का सटीक अनुमान लगाना कठिन है क्योंकि आंकड़े अलग–अलग और परस्पर–विरोधी हैं। 1995 में भारत सरकार के राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो ने हर वर्ष 6,000 दहेज हत्याओं की जानकारी दी थी। एक अधिक हाल की पुलिस रिपोर्ट का कहना है कि 1997 में दहेज हत्याओं में 170 प्रतिशत की वृद्धि हुई। ये सभी सरकारी आंकड़े जमीनी स्तर की कठोर सच्चाई को काफी कम करके बताते हैं। अनधिकारिक अनुमानों के अनुसार दहेज मृत्युओं की संख्या एक वर्ष में 25,000 है।" 1997 में किये गये एक अध्ययन में *विमोचना* ने बंगलौर में काफी संख्या में महिलाओं की अप्राकृतिक हत्याओं की जानकारी दी – "हमने पाया कि 1997 में बंगलौर में महिलाओं की 1,133 अप्राकृतिक मृत्युओं में से केवल 157 को हत्या का, जबकि 546 को आत्महत्या और 430 को दुर्घटनाओं का परिणाम माना गया था।"

यह देखा गया है कि दहेज की स्वीकृति का दायरा और व्यापक हुआ है और इसने न केवल पारंपरिक रूप से इसे अपनाने वाली उच्च वर्गीय हिंदू जातियों को, बल्कि ईसाइयों, मुसलमानों, एनिमिस्टों और आदिवासी समूहों को भी अपने अंतर्गत ले लिया है। वर्ष 2003 में अखिल भारतीय जनवादी महिला संगठन (एआईपीडब्ल्यूए) द्वारा जारी रिपोर्ट *दहेज के बढ़ते आयाम* लेख में बृंदा करात ने लिखा है – "कुल मिलकार विभिन्न जातियों, धर्मों, क्षेत्रों और वर्गों के बीच विवाह की रीतियों की बहुलता उस एकरूप उच्च हिंदू जाति वाले मॉडल के पक्ष में जा रही है जो महिलाओं के नीची दृष्टि से देखने, दहेज के लेन–देन और पुरुषत्व प्रधान विवाह को समाहित किये हुए हैं। उदारीकरण की संस्कृति के तेजी पकड़ने के साथ–साथ विवाह "भूमंडलीकृत" हो गये हैं, जिन पर अत्यधिक पैसा खर्च होता है और जो परिवारों के आर्थिक और सामाजिक दर्जे के साक्षी होते हैं। इस बात पर गौर करना भी जरूरी है कि दहेज में उपहार देने की प्रथा खर्चीले विवाह समारोहों के साथ ही शुरू और खत्म नहीं होती। विवाह,

गर्भधारण, बच्चे के जन्म, खासकर लड़के के जन्म, त्यौहारों, सास या ससुर की मृत्यु जैसे हर अवसर पर पति, उसके परिवार और रिश्तेदारों को उपहार पर उपहार दिये जाते हैं। यह सच है कि दो–तरफा उपहारों का प्रचलन है, पर यह बात भी सच है कि लड़की के परिवार को जितना मिलता है उससे कहीं अधिक उसे देना पड़ता है।

क्या आगे कोई रास्ता है?

आंदोलन में आई चुप्पी को तोड़ने के कोई आसान तरीके नहीं हैं। असल में, किसी अकेली रणनीति के बल पर दहेज और दहेज–हिंसा की समस्या से नहीं निबटा जा सकता। पहले, जब आंदोलन अपने उत्कर्ष पर था, तब जानकारी फैलाने और जागरूकता पैदा करने के लिए सांस्कृतिक माध्यमों का उपयोग एक असरकारी तरीका होता था। यह कार्य नये और वर्तमान सांस्कृतिक समूहों का गठन करके, नये नाटक, गीत आदि तैयार करके अभी भी किया जा सकता है। लोग संप्रेषण के रचनात्मक रूपों पर अच्छी प्रतिक्रिया करते हैं। साथ ही साथ 1970 और 1980 के दशकों बड़े आंदोलन के रूप में न सही स्थानीय कार्यकलापों के जरिये आंदोलन में फिर से रफ्तार लाई जा सकती है। साथ ही साथ कानूनी हस्तक्षेपों के साथ राजनीतिक वर्ग, नेताओं, सांसदों आदि को विचार–विमर्शों में शामिल करने की जरूरत भी है ताकि उदासीनता के इस चक्र को तोड़ा जा सके। उदाहरण के लिए, महिला संगठन पारस्परिक विचार–विमर्श आयोजित कर नेताओं और सांसदों को उनमें शामिल होने के लिए आमंत्रित कर सकते हैं।

vknkyu&1 dh dN >kfd;k

शादी के मात्र दो महीने बाद एक युवा लड़की, तातो ने आत्महत्या कर ली थी। यहां हम *मानुषी* में पहले से प्रकाशित उस पत्र को प्रकाशित कर रहे हैं जो उसने अपने पति को अलविदा करते हुए लिखा थाः

मेरे राजा,
मैं जा रही हूं। मुझे माफ करना...

जब से मैं तुम्हारे घर में आई, तुम्हारे घर में समस्याएं पैदा हो गईं। तुम्हारे घर में मेरा आना शुभ नहीं था। इसलिए मैं जा रही हूं। मेरी हर कोशिश यही होगी कि मैं जिंदा न रहूं, क्योंकि अगर मैं जिंदा रही तो मेरा ही नहीं, तुम्हारा जीवन भी बर्बाद हो जाएगा। मुझे अस्पताल मत ले जाना।...

मैं पेट में पल रहे तुम्हारे बच्चे को भी अपने साथ लिये जा रही हूं। इसके लिए मुझे माफ करना। तुम्हारी इच्छा दुबारा शादी करने की थी, सो तुम कर लेना। दहेज में जो कपड़े मैं साथ लाई थी उन्हें जला देना या मेरे माता–पिता को वापस दे देना। तुम्हारे परिवार ने मुझे जो कपड़े दिये थे उन्हें इस्त्री करा कर नई बहू के लिए रख देना।

जब नई बहू घर में आये तो उसकी बात सुनना, उससे झगड़ा मत करना। अगर उसके रिश्तेदार तुम पर ध्यान न दें तो भी खुश रहने की कोशिश करना। नहीं तो उसका जीवन बर्बाद हो जाएगा। अगर वह अकेले में तुमसे कोई बात कहे तो घर में किसी और को कभी मत बताना...

(हिस्ट्री ऑफ डुइंग से साभार)

1970 और 1980 के दशकों के जुझारू प्रतिरोधों के अल्पकालिक परिणाम सामने आये। उन्होंने संचार माध्यमों का ध्यान आकर्षित किया और लोगों को दहेज और महिलाओं के खिलाफ हिंसा के बारे में बैठकर गंभीरता से सोचने के लिए मजबूर किया। पर ये तरीके ज्यादा समय तक टिके नहीं रह सके। समान रूप से महत्वपूर्ण यह है कि आंदोलनों के फलस्वरूप जो कानूनी सुधार किये गये वे स्थिति में पर्याप्त बदलाव न ला सके। इन प्रतिरोधों का अपना औचित्य तो था पर साथ ही इन्होंने दहेज के लड़ने की पद्धतियों पर फिर से गंभीरता से सोचने के लिए प्रेरित किया।

1970 और 1980 के दशकों के प्रतिरोधों के बारे में बृंदा करात ने लिखा है, "इन संघर्षों से कई कानूनों में सुधार आया, पर आज ऐसी रणनीति अपर्याप्त होगी।" उनका कहना था कि, "पुरुषों को दहेज–प्रथा के खिलाफ बोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जो युवक दहेज नहीं लेते उन्हें आदर्श मिसाल के रूप में प्रस्तुत करके उनके इस कार्य का प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए। बहुत से समुदायों ने दहेज लेने के लिए पहल की है। ऐसे उदाहरणों को व्यापक रूप से प्रसारित किया जाना चाहिए। केरल में युवाओं ने "दहेज के खिलाफ पुरुष" नामक संस्था बनाई है और वे अन्य पुरुषों को दहेज न लेने के लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं।

पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं द्वारा जवाबी संघर्ष की कुछ घटनाएं खबरों में आ रही हैं। मई, 2003 को, 21 वर्षीय निशा तब खबरों में उभर कर आई जब उसने शादी के कुछ मिनट पहले ही पुलिस को बुलाकर दहेज–उत्पीड़न की खबर दर्ज कराई थी। दूल्हे ने निशा के पिता से और दहेज मांगा था। निशा एक तरह से 'रोल मॉडल' बन गई। संचार माध्यमों का ध्यान आकर्षित हुआ और समाचार पत्रों के अग्रणी लेखों में उसका उल्लेख किया गया और उसे लेकर रेडियो पर परिचर्चाएं भी प्रसारित की गईं। बीबीसी को दिये गये अपने एक साक्षात्कार में उसने कहा, "बार–बार अपना किस्सा सुनाते–सुनाते मेरी आवाज ही बंद हो गई है, पर मुझे अच्छा लग रहा है क्योंकि मैं मानती हूं कि हर लड़की और महिला को ये बातें जाननी चाहिए।" इसके चार वर्ष बाद गुजरात के रामकोट में एक और स्तब्ध कर देने वाले प्रतिरोध की घटना सामने आई। यहां 22 वर्षीय पूजा चौहान ने गलियों पर नग्न अवस्था में दौड़ते हुए दहेज–उत्पीड़न के खिलाफ अपनी आवाज उठाई। "पूजा चौहान का कहना था कि उसने प्रतिरोध का यह अनूठा तरीका इसलिए अपनाया है क्योंकि उसे दहेज न लाने और लड़की को जन्म देने के लिए लगातार उत्पीड़ित किया जा रहा है। जब पूजा ने न्याय न मिलने पर पुलिस आयुक्त के कार्यालय के सामने नग्न रूप से मार्च करने की धमकी दी तो इसका तत्काल प्रभाव पड़ा और उसके पति प्रताप सिंह चौहान, सास–ससुर और पड़ौसियों – वेदी भारद्वाज और बीनू दलित को गिरफ्तार कर लिया गया" (टाइम्स ऑफ इंडिया)। पर इसके साथ ही पुलिस ने पूजा के खिलाफ अशालीन व्यवहार का केस दर्ज कर दिया। राजकोट के पुलिस आयुक्त के. नित्यानंदम का कहना था कि, "हमने पूजा की शिकायत पर गिरफ्तारियां कर ली हैं, पर अशालीन व्यवहार के लिए उसके खिलाफ कार्रवाई करने की योजना बना रहे हैं। पर कार्रवाई करने से पहले हम उसकी मानसिक स्थिति की जांच करेंगे। पुलिस ने कार्रवाई तभी की जब संचार माध्यमों ने ध्यान आकर्षित किया, न कि उससे पहले जब उस 22–वर्षीय लड़की ने किसी भी अन्य नागरिक की तरह, उससे मदद मांगी थी।

vf[ky Hkkjrh; tuoknh efgyk lxBu dh fjikVZ

वर्ष 2003 में अखिल भारतीय जनवादी महिला संगठन द्वारा किये गये 'दहेज के बढ़ते आयाम' शीर्षक सर्वेक्षण अध्ययन से यह उद्घाटित हुआ कि पिछले दशक में दहेज की प्रथा कितने व्यापक रूप से फैली है। 30 विवाहित महिलाओं, 23 युवा लड़कियों और 10 पुरुषों को शामिल करते हुए दिल्ली कुल 63 मुस्लिमों के बीच किये गये इस सर्वेक्षण ने इस बात की ओर इशारा किया कि समुदाय के भीतर दहेज की जड़ें और मजबूत हो रही हैं: "दहेज प्रथा के समर्थन में अलग–अलग लोगों ने अलग–अलग कारण बताये। युवा लड़कियों और उनके माता–पिता का (सिवाय एक के जिसकी आय 5000 से 10,000 के बीच थी) कहना था कि ऐसा समाज के भीतर मौजूद कठोर रीति–रिवाजों के कारण हैं। युवा लड़कियों ने इसे अपना अधिकार बताया। उनका कहना था कि उन्हें अपने माता–पिता की जायदाद में कोई हिस्सा नहीं मिलता, इसलिए उसका कुछ हिस्सा प्राप्त करने का यही तरीका है... अधिकतर ने बताया कि परंपरा की वजह से ही वे दहेज लेते हैं। अगर वे दहेज नहीं लेंगे तो उन्हें अपने मायके के घरों में सम्मान नहीं मिलेगा।" हरियाणा में – जिसका यौन अनुपात चिंताजनक रूप से निम्न है – दहेज सभी आर्थिक तबकों के बीच फैल गया है। अखिल भारतीय जनवादी महिला संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, "अधिकतर उत्तरदाताओं ने यह माना कि वे लड़की के जन्म से डरते हैं क्योंकि उसकी शादी के समय दहेज देना पड़ेगा।" तमिलनाडु में सभी जातियों की अधिकतर लड़कियों का कहना था कि दहेज के बिना शादी करना असंभव है। पर इसी के साथ यह रिपोर्ट उत्तरदाताओं के शैक्षिक स्तर और दहेज के प्रति उनके दृष्टिकोण के बीच संबंध का उल्लेख करती है। निम्न शैक्षिक स्तर वाले दहेज को जीवन का एक तरीका मानते हैं, पर स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त महिलाएं दहेज प्रणाली से असहमत है। यह रिपोर्ट दहेज के प्रति दलित समुदाय के बदलते दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डालती है। पारंपरितक दलित रीति–रिवाजों के अनुसार वधू 5 बर्तनों के साथ वर के घर जा सकती है और यह परिवार के साधनों की सीमा से बाहर हो तो *पाई पुंजी* समारोह में पत्तल या पत्तियां दी जा सकती है। वर का परिवार विवाह–भोज का खर्च उठाता है। पर अब दहेज के फैलाव का इस पारंपरिक प्रथा पर प्रभाव पड़ रहा है। अखिल भारतीय जनवादी महिला संगठन की रिपोर्ट के अनुसार "ऊंची जाति के लोगों का अनुकरण करने की प्रवृत्ति और दलितों के बीच उपभोक्ता संस्कृति के फैलने से अब रंगीन टेलिविजन, फ्रिज, मोटर साइकल, कूलर, आदि की मांग की जाने लगी है। इसके अलावा नकद पैसे की मांग भी बढ़ रही है।"

यह रिपोर्ट बताती है कि शैक्षिक पृष्ठभूमि और आय का स्तर जो भी हो सभी जातियां और समुदाय लंबे समय से दहेज प्रथा अपनाये हुए हैं। कुछ माताओं ने बताया कि मात्र पंद्रह साल पहले तक दहेज की मांग सीमित थी। लगभग तीन दशक पहले विवाहित हुई महिलाओं ने अखिल भारतीय जनवादी महिला संगठन को बताया कि पहले केवल दो गहने और कुछ बर्तन दिये जाते थे। पर अब "बढ़ते उपभोक्तावाद की वजह से निस्संदेह दहेज की मांग बढ़ी है।

उच्च आय वाले दलित परिवारों के अनुसार उनके यहां दहेज प्रथा है ही नहीं। अच्छे पदों पर नियुक्त कुछ सुशिक्षित अभिभावकों ने दहेज प्रथा के विरुद्ध जोश के साथ अपनी बात तो कही, पर व्यक्तिगत जानकारी देने में झिझके और फार्म नहीं भरे।"

सर्वेक्षण से पता चलता है कि हर राज्य में दहेज की अपेक्षाएं और मांगे बढ़ी हैं, पर उन राज्यों में भी – जहां मूल रूप से यह प्रथा थी ही नहीं – अब दहेज लिया–दिया जाता है। उदाहरण के लिए, उत्तरांचल में दहेज की परंपरा कभी भी नहीं रही, पर तीन–चार दशक पहले यहां दहेज प्रथा शुरू हुई और पिछले 15 वर्षों में उसकी पकड़ मजबूत हुई है। अनुसूचित जनजातियों की भी यही स्थिति है। भोटिया जनजाति के 20 परिवारों के सर्वेक्षण को आधार बनाते हुए इस रिपोर्ट में कहा गया है, "इस समुदाय में कुछ साल पहले तक दहेज का लेनदेन नहीं होता था पर समुदाय के सदस्यों की आर्थिक स्थिति में सुधार आने के साथ–साथ यह प्रथा काफी तेजी से फैल रही है।"

आम तौर पर मुस्लिम समुदाय को दहेज और बहू को जलाने जैसी प्रथाओं से नहीं जोड़ा जाता था क्योंकि यह माना जाता था कि इस्लामी शादियां दहेज को वर्जित करती हैं। किंतु अब्दुल वाहीद का कहना है – "इन मान्यताओं के विपरीत, मुस्लिम महिलाएं दहेज प्रथा का शिकार हैं और उन्हें काफी अधिक उत्पीड़न झेलना पड़ता है।" (भारतीय मुस्लिमों के बीच दहेज की प्रथा, *इंडियन जरनल ऑफ जेंडर स्टडीज*) उनका कहना कि भारत के मुस्लिमों के रीति–रिवाज, परंपराएं और सामाजिक संस्थाएं 'इस्लामिक' से अधिक भारतीय है। हालांकि इस्लाम सजातीय विवाह या हाइपरगैमी की इजाजत नहीं देता, पर ऐसे विवाह विशेषकर उत्तर भारत में होते रहे हैं। साथ ही मुस्लिम महिलाएं विरासत के अधिकार से वंचित हैं।

इस्लामी तौर–तरीकों में एक अरबी शब्द *जाहेज* का उपयोग होता है जिसका संबंध शादी से है। इसका मतलब है कुछ चीजें उपलब्ध कराना जैसे कि दुल्हन का साज–सामान, मूल्यवान चीजें और पैसे। मुस्लिम धर्मशास्त्री *जाहेज* की इजाजत तो देते हैं, पर एक हद तक। पिछले तीन दशकों में स्त्रीधन की तरह *जाहेज* का मतलब दहेज हो चुका है। समय के साथ–साथ दहेज और खर्चीला होता गया और जो दहेज नहीं दे सकते उनके लिए तो यह गंभीर समस्या बन गया है।

दहेज की मांग उन क्षेत्रों में ज्यादा है जहां *गोडे–के–जोडे–की–रकम* (आंध्र प्रदेश और आसपास के क्षेत्रों की विवाह–प्रथा) मौजूद है। *तिलक* की रस्म तो हिंदू–मुसलमानों में समान रूप से मौजूद है पर *गोडे–के–जोडे–की–रकम* का मूल रूप से अर्थ था बहू के माता–पिता द्वारा दूल्हे को दिये जाने वाले हल्के–फुल्के उपहार। अब वधू के परिवार को कीमती उपहार और काफी मात्रा में पैसा देना पड़ता है।

इंदु मेनन ने केरल के मुस्लिम परिवारों के एक अध्ययन में यह पाया कि 61 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नकद या संपत्ति के रूप में दहेज दिया था। उन्होंने इस बात को दो प्रकार से स्पष्ट किया हैः पहला, दहेज मुस्लिमों के बीच आम बात हो गई है। दूसरा, शिक्षित लड़की हो तो माता–पिता शिक्षित वर ढूंढ़ते हैं और मुस्लिमों में शिक्षित पुरुषों की संख्या कम है।

JAGORI

efgyk vnkyr

महिला अदालतें, एक नारीवादी परिचर्चा

इस निराशापूर्ण स्थिति में, दहेज पर ध्यान केंद्रित कर उसे सार्वजनिक चर्चा का विषय बनाने पर ध्यान देने की जरूरत है। *विमोचना* द्वारा जुलाई 2009 में बंगलौर में आयोजित महिला अदालत महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पर विचार विमर्श को नये सिरे से शुरू करने का एक प्रयास है। इसके अंतर्गत देश भर की महिलाएं दहेज और उससे जुड़े मुद्दों पर विचार करने के लिए बंगलौर में जमा होती हैं और कार्यकर्ताओं, अकादमिक लोगों, कानूनी विशेषज्ञों और ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं की एक न्याय–पीठ के सामने अपने अनुभवों को प्रस्तुत करती हैं और साथ ही यह बताती हैं कि उन्होंने हिंसा का विरोध किस तरह किया। महिला अदालत एक नये प्रकार का प्रयोग है। इसका मुख्य उद्देश्य महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कार्यक्षेत्र तैयार करना है। साथ ही यह दहेज संबंधी हिंसा को एक ऐसे व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत करता है जहां हिंसा की जड़ों का प्रसव–पूर्व दिनों तक पता लगाया जा सकता है। दहेज विरोधी कानूनों की तरह, प्रसव–पूर्व जांच तकनीक कानून भी विफल रहा है। एक आकलन के अनुसार, हर साल 20 लाख बालिका–भ्रूणों की हत्या कर दी जाती है। शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय लोग प्रजनन प्रौद्योगिकी में सुधार के चलते इसका लाभ उठा रहे हैं। इसका परिणाम भारत की निम्न यौन अनुपात में नजर आता है। 0–6 वर्ष समूह में यौन अनुपात लगातार गिरता रहा है। यह जहां 1961 में 976 और 1991 में 945 था वहां 2001 में गिर कर 997 हो गया। बंगलौर में आयोजित महिला अदालत में भ्रूण के यौन–चयन, गिरते हुए यौन अनुपात, मानव–सौदेबाजी, जबरन वेश्यावृत्ति, बलात्कार और यौन हिंसा, संपदा, अधिकार और बाल विवाह और मानसिक उत्पीड़न जैसे मुद्दों पर विचार किया जाएगा।

महिला अदालत एक अलग तरह का कार्यक्रम है। इसके अनुसार प्रगतिशील कानून जरूरी हैं पर वे दहेज और घरेलू हिंसा से लड़ने का एकमात्र साधन नहीं हो सकते। एक तर्क यह दिया जाता है कि हम हिंसा की चर्चा को पितृसत्ता और पुरुषों की मानसिकता तक सीमित कर देते हैं। पर यह जरूरी है कि हम यह उद्घाटित करें कि जनतंत्र की संस्थाएं उसी पितृसत्ता वाली भाषा का उपयोग क्यों करती हैं। अन्य सत्ता–संबंधों की तरह जेंडर–आधारित संबंध घर की चारदिवारी तक सीमित नहीं होते। वे समाज के हर स्तर तक फैले हैं – शैक्षिक संस्थाओं, नौकरशाही, सरकार, कानून आदि के स्तर तक!

foekpuk }kjk idkf'kr yhQyV

सभी महिला मतदाताओं के लिए

विमोचना कोई राजनीतिक दल नहीं है। अब आप ही बताओ कि हम आम चुनावों के समय आपके पास क्यों पहुंचे हैं? सन् 1979 में जब हम आपके पास आये थे तो हालत अलग थी। हमने हिंसा – दहेज, बलात्कार, यौन उत्पीड़न, संचार माध्यमों में शोषण, आवास, जल आदि ऐसे मुद्दों पर काम करने वाले उम्मीदवारों को मत देने को कहा था जिन पर राजनीतिज्ञ पूरी तरह से चुप्पी साधे हुये थे।

पर तब से अब तक लंबा समय गुजर गया है। महिलाओं के मुद्दे तथाकथित रूप से "खुलकर" सामने आने लगे हैं। पर हमारी बात को बिना बात राजनीतिक घोषणा पत्रों में दोहराया जाता है। पर हम अब फिर से आपके पास क्यों आ रहे हैं?

शायद इसलिए कि झूठे वायदों और खोखले आदर्शलोक के इस युग में शब्दाडंबर भारत की अधिकांश महिलाओं की दैनिक वास्तविकता को छिपा देता है। हम चाहते हैं कि आप राजनीतिक वायदों के पीछे छिपे इस पाखंड का पर्दाफाश करें। सभी राजनीतिक दल राजनीति में महिला–आरक्षण की बात करते हैं। कोई तो 30 प्रतिशत आरक्षण तक का वायदा करता है। पर कितने दलों ने अपने वायदे पूरे किये? सच यह है कि इस वर्ष महिला उम्मीदवारों की संख्या काफी कम हुई है।

हम आपसे इस पाखंड का पर्दाफाश करने के लिए इसलिए कह रहे हैं क्योंकि हम सभी जानते हैं कि हमारे अधिकतर प्रतिनिधि जो बातें बाहर कहते हैं उन्हें घर पर अमल में नहीं उतारते। आज पत्नी–उत्पीड़क और बलात्कारी महिलाओं की नैतिकता की बात करता है और कट्टरतावादी धर्मनिरपेक्षता का पाठ पढ़ता है। इसलिए हमें अपने मत का उपयोग कर इस पतनशील राजनीतिक संस्कृति को बदलना होगा। आइए निम्न प्रकार के नेताओं का जम कर विरोध करें:

- जे.आर अंसारी केंद्रीय राज्य वन मंत्री पर मुक्ता दत्ता ने बलात्कार का आरोप लगाया पर उन्हें लोक सभा का टिकट दिया गया।
- जनता दल नेता कालवी ने रूप कुंअर की हत्या का खुलकर समर्थन किया। 1988 में रूपकुंअर को पति की अंत्येष्टि चिता में झोंक कर जिंदा जला दिया गया था।
- 19 भाकपा (मा) कार्यकर्ताओं को कष्टकरी संगठन की युवा महिला कार्यकर्ता के सामूहिक बलात्कार के जुर्म में गिरफ्तार किया गया।
- एच.के.एल. भगत अभी भी केंद्रीय मंत्री बने हुए हैं जब कि 1984 के दिल्ली के दंगों में सिखों की हत्या के सिलसिले में उनका नाम आया है।

- डोडाबलपुर से जनता दल उम्मीदवार के.एल. जालप्पा एक वकील की हत्या के मामले में संलिप्त पाये गये।
- इस समय कर्नाटक से कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ रहे, डॉ. वेंकटेश ने बिना कोई मुआवजा दिये अपने बीबी–बच्चों को छोड़ दिया और उनके खिलाफ पत्नी पर हमले के आपराधिक मुकदमा चल रहा है।

यह सूची अनंत है...

विडम्बना यह है कि किसी भी राजनीतिक दल ने गंभीर अपराधों में संलिप्त इन लोगों के खिलाफ जांच कराना उचित नहीं समझा। सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि इन अपराधों को अपराध नहीं माना जाता। इसलिए ....

अपने चुनाव क्षेत्र में ऐसे उम्मीदवारों का बहिष्कार करें जो महिला–समानता की बात करते हैं, पर व्यक्तिगत जीवन में उनका अपमान करते हैं।

उन उम्मीदवारों का समर्थन करें जो महिला–हिंसा के खिलाफ आवाज उठाएंगे।

उन उम्मीदवारों का समर्थन करें जो घर के भीतर और बाहर एक ही बात कहते हैं।

यह एक छोटा पर पहला कदम होगा।
नवम्बर 1989
विमोचना
महिला अधिकार मंच, पोस्ट बॉक्स–4605

l:In e: fir`lÙkkokn dh vkokt:

वह चाहे सरकार के भीतर हो या बाहर, हमारा राजनीतिक वर्ग दहेज के खिलाफ सक्रिय संघर्ष से दूर ही रहता है। वह केवल कानून पर ध्यान केंद्रित करता है। राजनीतिक चर्चा में सामाजिक सुधार का मुद्दा तभी आता है जब कानूनों पर विचार किया जाता है। इसलिए कानून के दायरे से बाहर दहेज के खिलाफ सक्रिय संघर्ष केवल महिला समूहों के कार्यक्षेत्र का हिस्सा बन गया है। महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण का विधेयक 13 सालों से रुका पड़ा है। इसे लेकर लोक सभा में बड़े अभद्र दृश्य देखने को मिले, पुरुष सांसदों के साथ हाथापाई तक हुई और सबकी नजर के सामने इस विधेयक के चिथड़े–चिथड़े उड़ गये। ऐसा लगा मानो विधेयक को पारित करने का जिम्मा केवल महिला सांसदों का है। पुरुष सांसदों ने – चाहे वे किसी भी दल के हों – दिखावा भर किया, पर विधेयक को महिला सांसदों की तरह, पारित करने के लिए जोर नहीं डाला।

वर्ष 2005 में जब लड़कियों को लड़कों के समान संपदा अधिकार देने के लिए हिंदू उत्तराधिकार कानून में संशोधन पर चर्चा हो रही थी, समाजवादी पार्टी के सांसदों ने इसका यह कह कर विरोध किया कि इससे घर में अनिष्ट हो जाएगा, भाई–बहन के टकराव हो जाएगा, आदि। यह रुझान इससे पहले से मौजूद रहा है।

पांच दशक पहले सांसदों ने संसदीय समिति के इस रुझान का विरोध किया था कि विवाह के समय सभी उपहारों पर पाबंदी लगा दी जानी चाहिए। इस संदर्भ में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की रंजना शील का कहना था कि, "हिसार के सीनियर फैलो, पंडित ठाकुर दास भार्गव ने विधेयक के उन्मूलन की मांग की थी। अन्य सदस्यों ने दहेज को ऐसी प्राचीन प्रथा बताया जो महिलाओं को 'सुरक्षा' और 'संरक्षण' प्रदान करती है। यह लड़की के प्रति स्नेह का संकेत है। .. .. अपने आप में दहेज तब तक ऐसी बुराई नहीं है जब तक मांग, दूसरे पक्ष की उचित वित्तीय क्षमता के बाहर न हो।" (*पॉलिटिकल एंड इक्नामिक वीकली*: उत्तर भारत में संस्थाकरण और विस्तार)। दिलचस्प बात यह है कि इनमें से कुछ तर्क दहेज–विरोधी कानून में प्रतिबिंबित होते हैं।

L=h/ku

पारंपरिक हिंदू रीति–रिवाजों में स्त्रीधन केवल स्त्री की संपत्ति का हिस्सा होता है जो मां से बेटी को मिलता है। यदि इसे परिवार के पुरुष सदस्य को आपात्कालीन स्थिति में ही इसे दिया जाता है तो उसे अपेक्षा की जाती है कि वह इसका अच्छा उपयोग करेगा और इससे ब्याज प्राप्त करेगा। स्त्रीधन पैसे, गहनों, पत्नी, बहन, बहू के रूप में महिला को दिये गये व्यवसाय के हिस्से के रूप में हो सकता है। इसमें सास–ससुर द्वारा बधू को दिये गये उपहार और उसके द्वारा प्राप्त संपत्ति शामिल होती है।

दहेज को लेकर होने वाले विचार–विमर्शों में स्त्रीधन को दहेज मानने वाले लोगों का तर्क यह है कि इसमें लूट खसोट का तत्व मौजूद है। इसके विपरीत यह तर्क दिया जाता है कि स्त्रीधन महिला की स्थिति को मजबूत बनाता है। यह कहा जाता है कि लड़कियों को क्योंकि लड़कों की तरह विरासत का अधिकार नहीं है, इसलिए स्त्रीधन के माध्यम से उनका हिस्सा उन्हें मिल जाता है। कागज पर ही सही, वर्ष 2005 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन कर संसद ने इस पर ध्यान दिया और लड़कों की तरह लड़कियों को उत्तराधिकार के समान अधिकार प्रदान किये। पर दूसरे जेंडर कानूनों की तरह परिवार के भीतर और न्यायपालिका और पुलिस में मौजूद पितृसत्तात्मकता इस महत्वपूर्ण संशोधन के लाभ प्राप्त करने में रुकावट डाल सकती है। कार्यकर्ताओं का कहना है कि अधिकतर महिलाओं को इस कानून के परिवर्तन की जानकारी ही नहीं है।

कार्यकर्ताओं और विद्वानों का एक हिस्सा इस तर्क के सही होने को लेकर सवाल उठाता है कि महिलाओं का स्त्रीधन पर 'नियंत्रण' होता है। उनका कहना है कि बहू इसे अपने 'साथ' तो ले जाती है पर वह 'उसका' नहीं होता। इस पर महिलाओं का नियंत्रण हर देश के अलग–अलग स्थानों में अलग–अलग है। ब्रिटेन में सिख महिलाओं का अध्ययन करने वाली परमिंदर बसु ने बताया कि किस तरह से महिलाएं स्वयं अपनी आय से महंगा दहेज एकत्र करती हैं जिन पर वास्तव में उनका पर्याप्त नियंत्रण होता है। इससे महिलाओं का सशक्तीकरण होता है। (दहेज और उत्तराधिकार)। श्रीमती बसु का कहना है कि, "सबसे कठिन समस्या खुद वधुओं की होती है। कीश्वर के अनुसार कई महिलाओं ने उन्हें लिखा कि मायके के परिवार के संसाधनों के एकमात्र हस्तांतरण के रूप में दहेज का उनके लिए भावनात्मक मूल्य होता है; क्योंकि और इसने उन्हें यह जानने का मौका दिया कि दहेज वास्तव में है क्या।" (दहेज और उत्तराधिकार)।

बसु ने यह सवाल उठाने के लिए कि किस प्रकार से रीति–रिवाज और लूट के बीच का अंतर धूमिल पड़ जाता है, बंगाली प्रथा *तत्व* का उल्लेख किया है। "बंगाली हिंदू विवाह में विवाह करने वाले परिवारों को बीच उपहारों के प्रदर्शन – यानी तत्व से मेरा मन खराब हो जाता है। कई बार लोग मुझे बताते हैं कि मैं तत्व को दहेज हत्या के रूप में 'दहेज' समझ रही हूं। (देने की राजनीतिः स्त्रीवादी मुद्दों के रूप में दहेज और उत्तराधिकार)।

क्या बंगाल की पारंपरिक प्रथा *तत्व* को – यानी थालों को सजाना, उनमें अच्छे–अच्छे सामान भर कर दूल्हे के परिवार के पास भेजना–स्वैच्छिक उपहार माना जाए या फिर दहेज कहा जाए? भेजे गये थालों की संख्या बातचीत का मुख्य विषय और प्रतिष्ठा का चिन्ह होती है। इससे नये सिरे से यह विवाद जन्म लेता है कि कौन से उपहार स्वैच्छिक हैं और किन उपहारों को दहेज माना जाए। *तत्व* में भेजे गये उपहार यूं तो स्वैच्छिक रूप से भेजे गये लगते हैं पर उनमें सामाजिक रूप से मंजूर जोर–जबर्दस्ती का तत्व भी नजर आता है।

efgyk,a dkuwu vkj jkT; lÙkk

राज्यसत्ता के वायदों पर कितना विश्वास किया जाय, इसे लेकर महिला आंदोलन में मतभेद है। उग्रवादी नारीवादियों का मानना है कि 1970 और 1980 के दशकों का वह ऐतिहासिक दौर जब महिला आंदोलन कानूनों में सुधारों से आशा करता था अब अतीत की चीज हो गया है। उनका कहना है कि कानून का सहारा लेने पर बेकार शक्ति खर्च नहीं करनी चाहिए। कानूनों और कानूनी संशोधनों की मांग करने हेतु राज्य और खासकर कानूनी संस्थाओं से आंदोलन को कितनी मदद मांगनी चाहिए इस पर सहमति नहीं है। इसी बिंदु पर तीव्र मतभेद उभरते हैं और महिला संगठन विभाजित हो जाते हैं। फ्लाविया एग्नेस का कहना है – "अगर कानून बना देने से उत्पीड़न का सामना हो सकता है तो 1980 का दशक भारतीय महिलाओं के लिए एक स्वर्णिम युग कहा जाएगा। उस दौर में हिंसा के विरुद्ध लगभग हर अभियान के परिणामस्वरूप नया कानून बना। पर अपराध संबंधी आंकड़े एक दूसरी ही कहानी बताते हैं। कानूनों का असर न के बराबर पड़ा। कुछ कानून तो कागज पर ही धरे रह गये" (महिला, विवाह और अधिकारों का अधीनीकरण)। पर ऐसा नहीं कि प्रगतिशील कानून महिलाओं के संरक्षण, संस्थिति और कल्याण को सुनिश्चित करने में कोई भूमिका नहीं निभाते।

राजेश्वरी सुंदरराजन का कहना है कि– "अपराधियों के लिए अधिक कठोर सजा की मांग करने या आरोपी पर सबूत जुटाने का जिम्मा डालने से स्त्रीवादी इसलिए हिचकते हैं कि इससे सजा–दर (कंविक्टशन रेट) और कम हो जाएगी।" इसके विरोध में यह तर्क दिया जाता है कि कानूनी सुधारों को लेकर चले आंदोलन महिला अधिकारों के बारे में नई चेतना जगाते हैं। उदाहरण के लिए घरेलू हिंसा–विरोधी कानूनों की वजह से 'सेव द फेमिली' जैसे संगठनों का गठन हुआ।

मधु कीश्वर का कहना है कि दोषपूर्ण दहेज – विरोधी कानून की वजह से महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के सभी मामलों को दहेज से जोड़ दिया जाता है। "यह रुझान इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि महिलाओं की मृत्यु के ऐसे मामलों में से, जिनमें उन्होंने अपने कष्टों का कोई विवरण नहीं छोड़ा, आधे मामलों में मृत्यु का कारण दहेज बताया गया (79 में से 36)। पर अत्याचार और हत्या की कोशिश के मामलों में से 14.7 प्रतिशत का एकमात्र कारण दहेज बताया गया, जबकि 13.2 प्रतिशत मामलों में दहेज का उल्लेख करते हुए दूसरे कारणों को प्राथमिक कारण बताया गया; और 72 प्रतिशत अन्य मामलों में दहेज का उल्लेख नहीं किया गया।" (दहेज बहिष्कार पर पुनर्विचार)।

पर कीश्वर के विचारों का महिला आंदोलन के दूसरे भागों की ओर से जबर्दस्त विरोध हुआ। रजनी परली वाला का कहना है कि "पत्नियों के खिलाफ मानवघाती हिंसा में तेजी आना" सामाजिक–आर्थिक कारणों से चालित बदलती हुई दहेज प्रथाओं का परिणाम है। उनके अनुसार, "यह इस समझ पर आधारित है कि दहेज को और बेशक विवाह के समय संपत्ति के

हस्तांतरण" के अधिकतर रूपों को अपने आप में समझा नहीं जा सकता (दहेज–विरोधी संघर्ष को पुनः पुष्ट करना)।

जेंडर हिंसा पर कानूनों के दण्डकारी स्वरूप के विरुद्ध बढ़ती आलोचना के प्रकाश में, नीति–निर्माताओं ने ऐसे आपराधिक प्रावधानों को दहेज हिंसा से महिला संरक्षण कानून, 2005 से बाहर रखा जो शिकायत के आधार पर गिरफ्तारी को अनुमति देते थे। अन्य कानूनों से अलग घरेलू हिंसा विरोधी कानून का उद्देश्य हिंसा–मुक्त विश्व में रहने के महिला के अधिकार को मान्यता देकर महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करता है। कानूनी उपचारों में निषेधादेश, मुआवजा और मौद्रिक राहत शामिल हैं।

कानून के कुछ दोषपूर्ण प्रावधान

दहेज–विरोधी कानून के कुछ समस्याजनक प्रावधानों पर गौर करना उपयोगी रहेगा जो इस प्रकार हैं:

- दहेज को विवाह के संबंध में पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को या एक पक्ष के माता–पिता द्वारा दूसरे पक्ष के माता–पिता को या किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी पक्ष को या किसी व्यक्ति को उक्त पक्षों के विवाह के संबंध में, विवाह के समय या विवाह के पहले दी जाने वाली संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के रूप में परिभाषित किया गया है।

- कानून में "उपहारों" का प्रावधान तो है पर दहेज को वर्जित किया गया है। इसे विवाह के समय दुल्हन को दिये जाने वाले उपहारों – बशर्ते कि वे स्वैच्छिक हों और नियमों के अनुसार सूचीबद्ध किये गये हों – के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता। दूल्हे को दिये गये उपहारों को – यदि वे मांग किये बिना दिये गये हों – छूट दी गई है।

- दूल्हे को दिये गये उपहार देने वाले व्यक्ति की वित्तीय हैसियत के संबंध में 'अत्यधिक मूल्य' के नहीं होने चाहिए।

- भारतीय दण्ड संहिता के एक संशोधन में यह अनुबंधित किया गया है कि यदि किसी महिला की विवाह के 7 वर्ष के भीतर मृत्यु हो जाती है और यह दिखाया गया है कि उसे दहेज के लिए उत्पीड़ित किया जा रहा था तो उसकी मृत्यु को दहेज मृत्यु माना जाएगा।

- 1984 और 1986 के दो संशोधन दहेज के लेन–देन को संज्ञेय (काग्निजेबल) अपराध बनाते हैं। इसने न्यायालयों को अपने ज्ञान या पुलिस रिपोर्ट के आधार पर कार्रवाई शुरू करने के लिए अधिकार संपन्न बनाया। महिला कार्यकर्ताओं के एक भाग का कहना था कि इन कठोर संशोधनों की वजह से कानून का दुरुपयोग हुआ है।

उक्त कानूनी प्रावधानों की आलोचनाएं इस प्रकार हैं:

- यह फैसला कौन लेगा कि उपहार स्वैच्छिक है या नहीं? जिसे विवाह के समय स्वैच्छिक कहा जाता है, उसे विवाह में दरार पड़ने के समय दहेज का नाम दे दिया जाता है। मधु कीश्वर का कहना है कि – "अतः कई बार वैवाहिक समस्याएं दहेज के विवाह से नहीं जुड़ी होतीं, पर जब विवाह टूटने को होता है तो महिला के परिवार दहेज–विरोधी कानून के कठोर प्रावधानों का सहारा लेकर मुकदमा दर्ज कर देते हैं (भारत में दहेज से निबटने की रणनीतियां और घरेलू हिंसा)।

- रंजना कुमारी के 1989 में किये गये अध्ययन के अनुसार स्पष्ट रूप से दहेज न मांगे जाने पर भी 60 प्रतिशत परिवारों ने दहेज दिया, 79 प्रतिशत ने 'दबाव में न आकर' 'स्वैच्छिक रूप दहेज दिया; 35 ने इसे लड़की की खुशी के लिए, 12 प्रतिशत ने हैसियत के प्रतीक और 22 प्रतिशत ने 'सामाजिक दबाव' में आकर दहेज दिया। कौन से उपहार आर्थिक हैसियत के अनुसार ''अत्यधिक मूल्य के हैं'' यह निर्धारित करने के कानूनी मानदंड अस्पष्ट हैं।

- कानून दहेज लेने वाले और दहेज देने वाले पक्षों को अपराधी मानता है। पर दहेज देने के लिए सजा का कोई मामला सामने नहीं आया है।

- कुछ लोगों के अनुसार कानून वैवाहिक सौदेबाजी के बदलते स्वरूप को ध्यान में नहीं रखता, कानून वैवाहिक लेनदेन या सौदेबाजी के बदलते हुए रूप को ध्यान में नहीं रखता। यह तर्क दिया जाता है कि दहेज को मात्र पारंपरिक रीति रिवाजों के प्रभाव के रूप में नहीं देखा जा सकता, क्योंकि आज के दहेज और स्त्री धन के बीच इतना अंतर है कि उनकी तुलना नहीं की जा सकती।

- इसके आगे हम मनोज मित्ता द्वारा लिखित रिपोर्ट प्रस्तुत कर रहे हैं जो कानूनी समाधान की बाधाओं को रेखांकित करते हुए न्यायपालिका और राजनीतिक वर्ग में गहरे जमी पितृसत्तात्मक सोच की ओर इशारा करती है। हालांकि बलात्कार कानून में किये गये संशोधन प्रगतिशील हैं पर न्यायपालिका का पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रह अक्सर उनके कार्यान्वयन को बाधित करता है। इसके अलावा, मित्ता का कहना है कि मृत्युदंड की सिफारिश करने की प्रवृत्ति का भी उलटा असर होता है और सजाएं कम हो पाती हैं।

bafM;u ,Dlisl e idkf'kr eukt feÙkk dh fjikV

वर्ष 2003 में जहां एक के बाद एक बलात्कार की कई बड़ी घटनाएं सामने आईं, वहीं इस वर्ष की शुरूआत अपराध के विरुद्ध कानून के शुभ संकेत के साथ हुई क्योंकि 3 जनवरी को सरकार ने इस आशय के कानूनी संशोधन को अधिसूचित किया कि बलात्कार के मामले में पीड़ित से उसके "सामान्य अनैतिक चरित्र" के बारे में पूछताछ नहीं की जा सकती।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम में यह सरल–सा संशोधन उन मांगों का परिणाम था जिन्हें 1979 में सनसनीखेज मथुरा बलात्कार कांड में दोनों आरोपी पुलिस वालों को न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किये जाने के बाद समय–समय पर उठाया गया था।

हालांकि थाने में पुलिस वालों द्वारा मथुरा का निश्चित रूप से बलात्कार किया गया था, पर निचली अदालत ने इस आधार पर उन्हें छोड़ दिया कि उसका पिछला आचरण यह दिखाता है कि उसे "यौन संपर्क की आदत है" और वह 'बुरे चरित्र' की है।

जहां उच्च न्यायालय ने पुलिस वालों को दोषी करार दिया, वहां सर्वोच्च न्यायालय ने पुलिस वालों को यह कहते हुए दोषमुक्त कर दिया कि मथुरा के शरीर पर चोट का कोई स्पष्ट निशान नहीं है। मथुरा के मामले पर उभरे आक्रोश के बावजूद सरकार ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 155(4) को – जो आरोपियों को उसके चरित्र पर हमला करने की अनुमति देती है – तो नहीं छुआ, पर 1983 में उसने कुछ कम मूलगामी सुधार किये जैसे कि बलात्कार का दण्ड 7 वर्ष की सजा से कम नहीं होना चाहिए, कैमरे में कार्यवाहियों की व्यवस्था और पीड़ित की पहचान को उद्घाटित करने को दण्डनीय बनाना।

पर दुख की बात यह है कि ऐसे मामले सामने आये हैं जिनमें न्यायाधीशों ने अनभिज्ञता और क्षुब्ध कर देने वाला पूर्वाग्रह दर्शाया। उदाहरण के लिए भंवरी देवी केस के मामले में – जिस पर बाद में नंदिता दास को लेकर एक फिल्म भी बनाई गई – एक न्यायाधीश ने कहा कि पीड़ित का बलात्कार नहीं हो सकता था क्योंकि वह दलित है, जबकि आरोपी ऊंची जाति का है।

राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि 1998 और 2000 के बीच बलात्कार की घटनाओं में 6.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। इन आंकड़ों ने 200 में साक्ष्य अधिनियम की धारा 155(4) के विरुद्ध अपने रुख के कठोर बनाने के विधि आयोग के फैसले को उचित ठहराया।

1980 में अपने पहली सिफारिश करते समय, विधि आयोग ने प्रावधान को हल्का बनाने का सुझाव दिया ताकि पीड़ित से उसके पिछले यौन आचरण के बारे में किये जाने वाले सवाल

आरोपी से ही संबंधित हों। पर दो दशक बाद बलात्कार के मामलों को प्रभावहीन बनाने के लिए इस प्रावधान के बढ़ते दुरुपयोग को देखते हुए विधि आयोग ने धारा 155(4) को पूरी तरह से हटाने की सिफारिश की।

वाजपेयी सरकार ने संसद के शीतकालीन सत्र में संशोधन करके तत्परता से इस सिफारिश पर प्रतिक्रिया की। धारा 155(4) को हटाने के साथ ही उसने यह कहते हुए धारा 146 में प्रावधान जोड़ा कि पीड़ित से उसके पिछले यौन आचरण के बारे में सवाल पूछना संभव नहीं होगा। इससे बलात्कार के मामलों के अभियोग में क्या अंतर आयेगा, अभी से यह बताना कठिन होगा।

बलात्कार के मामलों में सजा संबंधी नीति विवाद का एक अन्य विषय रही है। यहां तक कि गृह मंत्री एल.के. आडवाणी ने एक बार से अधिक यह बात कही है कि बलात्कार की सजा मौत होनी चाहिए।

महत्वपूर्ण रूप से आपराधिक न्याय व्यवस्था में सुधार के लिए गठित मलिमथ समिति ने आडवाणी से मृत्युदंड वाले सुझाव को नामंजूर कर दिया। उसने कहा कि जहां मृत्यु दंड को पलटा नहीं जा सकता, वहां इसकी वजह से न्यायाधीश अधिक प्रमाण की मांग करेंगे और इस तरह सजा–दर कम हो जाएगी।

इससे भी बुरी बात यह कि मृत्यु दंड का भय अपराधी को पीड़ित की हत्या करने के लिए उकसा सकता है। मलिमथ समिति का कहना था कि "जो बात वास्तव में रोकने का काम करेगी वह सजा की निश्चितता होगी, न कि सजा की मात्रा।" पर सजा की निश्चितता हासिल करने की बात करना तो आसान है पर इसे अमल में उतारना कठिन होगा।

JAGORI

{kf.kd ifrfcac% vknkyu&2 dh dN >kfd;k

पैंट में चींटियां

मेरी रॉय

1986 में सर्वोच्च न्यायालय ने त्रावणकोर ईसाई उत्तराधिकार कानून को रद्द कर दिया। इस कानून में कहा गया था कि:

बेटी को बेटे के हिस्से का एक चौथाई या 50,000 – जो भी कम होगा – मिलेगा।

इसे स्वतः ही भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम से प्रतिस्थापित कर दिया गया जिसके अनुसार इच्छापत्र हीन संपदा को बेटों और बेटियों में समान रूप से बांटा जाता है और विधवा को एक–तिहाई हिस्सा मिलता है।

यह बात असाधारण है कि 1995 में केरल के ईसाई–प्रभुत्व वाले समुदाय ने रूढ़िवादी चर्च और विधायिका की मदद से सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों को अप्रभावी बनाने का और पुराने भेदभावकारी कानून को फिर से वैध बनाने का प्रयास जारी रखा।

इसी के साथ समान नागरिक संहिता के लिए देशभर के महिला समूहों ने मांग उठायी ताकि अपने–अपने धर्मों के व्यक्तिगत कानूनों की वजह से भेदभाव की शिकार महिलाओं के लिए बेहतर प्रावधान सुनिश्चित किये जा सकें।

केरल में पिछले 100 वर्षों के दौरान महिलाओं के खिलाफ किये जा रहे क्रूरतापूर्वक भेदभाव को लेकर जरा भी आवाज नहीं उठाई गई। पर अब सरकार को बार–बार ईसाई पुरुषों द्वारा पैदा की गई "असुविधा" से अवगत कराया जा रहा है। मंत्री, के.एम. मणि का कहना है कि यदि कानून में देर होती है तो पुराने उत्तराधिकार कानून को 30 वर्ष की पूर्व–प्रभावी अवधि के लिए पुनः वैध बनाने के लिए एक अध्यादेश जारी किया जाना चाहिए। निश्चय ही चर्च ''पैंट में चींटी'' वाले बुरे रोग हो पीड़ित हैं और मंत्री, मणि को लगता है कि ईसाई पुरुषों का भली भांति ध्यान रखना अगले चुनाव में जीतने के लिए जरूरी है।

(*मानुषी,* 1996 – संपादक के नाम पत्र)

ngt] dekMh; gfl;r vkj mPp vkfFkd gfl;r oky ifjokjk e fookg ¼gkbijxeh½

दहेज की व्याप्ति और स्वीकार्यता को स्पष्ट कर सकने वाली कोई एक सामाजिक रचना नहीं है। एक मत हाइपरगैमी की ओर इशारा करता है; यानी यह नियम कि महिलाओं को उच्च कर्मकांडीय और आर्थिक हैसियत वाले परिवारों में विवाह करना चाहिए। इससे वर के परिवारों को कर्मकाण्डीय और आर्थिक श्रेष्ठता प्राप्त होती है। रजनी पलरीवाल के अनुसार, "दहेज चाशनी की तरह था, या आज के शब्दों में कहें तो प्रोत्साहन था। यह उपयुक्त जाति और गोत्र संबंधी नियमों के पालन के रूप में विवाह को चिन्हित करता था।"

ब्राह्मणवादी विवाह के उच्चतम रूप *कन्यादान* के एक अंग के रूप में दहेज की कर्मकाण्डीय स्थिति प्रभुत्वकारी ब्राह्मणवादी ढांचे को थोपने का ही रूप थी। एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार, "ब्राह्मण विधि–निर्माताओं द्वारा विवाह के वर्गीकरण को देखने का एक तरीका यह है कि इसे एक ऐसे देश में कन्यादान की ब्राह्मणवादी विचारधारा को थोपने का प्रयास माना जाये जिस देश में अनेक ब्राह्मण जातियों सहित अधिकतर लोग वधू की कीमत लेने की प्रथा का पालन करते हैं। विवाह के इस अत्यंत लोकप्रिय रूप को *असुर* बताया जाता था और इसकी ब्राह्मणों के लिए अनुपयुक्त प्रथा के रूप में निंदा की गई है।"

वधू की कीमत के लेनदेन में बदलाव

कुछ विद्वान चिंता के साथ यह कहते हैं कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बीच वधू की कीमत लेने की प्रणाली की जगह अब दहेज ले रहा है और इन उपहारों के लेनदेन की दिशा बदल रही है। वे इसे श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी में गिरावट के रूप में स्पष्ट करते हैं। वधू की कीमत के स्थान पर दहेज का आना और कार्यशक्ति में गिरावट आना महिलाओं के दर्जे में सामान्य गिरावट के साथ हुआ है। किंतु कुछ दूसरों के अनुसार श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि से अपने आप ही महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होगा। यह तर्क दिया जाता है कि जब तक महिलाओं का अपनी आय पर नियंत्रण नहीं होगा, और जब तक निर्णय में उनकी भागीदारी नहीं होगी, तब तक महिलाओं की स्थिति निम्न बनी रहेगी। शालिनी रांदेरिया और लीला विसारिया (वधू की कीमत और दहेज का समाजशास्त्र) के अनुसार "यह सच है कि दहेज के जोर–जबर्दस्ती वाले स्वरूप से महिलाओं के दर्जे में गिरावट आई है। पर इस बात को अवश्य इंगित किया जाना चाहिए कि सामान्य विवेक के विपरीत, महिलाओं को उन जातियों और समुदायों में उच्चतर दर्जा हासिल नहीं है जहां वधू की कीमत दी जाती है।" उनका तर्क है कि उच्चतर जाति की महिलाओं की तुलना में निम्न एवं अनुसूचित जाति की महिलाओं की अधिक मजबूत स्थिति का कारण तलाक और पुनर्विवाह की पारंपरिक प्रणाली से पैदा होने वाली सौदेबाजी की उनकी बेहतर स्थिति है।

दहेज का बदलता चेहरा

दहेज के संबंध में टकरावपूर्ण दृष्टिकोण इस तथ्य पर आधारित होना चाहिए कि आजकल के दहेज की – जिसमें न केवल वधू को, बल्कि वर, सास–ससुर, उनके संबंधियों को दिया जाने वाला फर्नीचर, घरेलू सामान आदि शामिल होता है – पारंपरिक *स्त्रीधन* से बहुत कम समानता है।

वर्तमान दहेज वधू के परिवार द्वारा प्रभावशाली संबंध बनाने और पैसा बनाने के अवसर बढ़ाने के लिए किया गया निवेश है। एक अच्छे संपर्क वाले परिवार में लड़की की शादी कराने का मतलब वधू के मायके के परिवार के लिए, खास कर उसके भाइयों के लिए – जो इस संबंध से लाभ प्राप्त करने की आशा करते हैं – ऊपर की ओर गतिशीलता हो सकता है। पारंपरिक *स्त्रीधन* से अभी भी समानता रखने वाला दहेज का शायद एकमात्र पहलू है – वधू का साज–सामान, सोने के गहने, घरेलू सामान और उसके माता–पिता द्वारा उसके नाम की गई कोई संपत्ति। कीश्वर का कहना है – "वर के परिवार के लिए दहेज का एक हिस्सा अपनी लड़की की शादी के लिए रखना या घरेलू सामान को केवल वधू को नहीं, बल्कि परिवार को दी गई भेंट मानना असामान्य नहीं है (भारत में दहेज और घरेलू हिंसा की संस्कृति का मुकाबला करने की रणनीति)।

दहेज की राशि और मात्रा हैसियत, आय और वर के परिवार के संपर्कों पर निर्भर करती है – आय जितनी अधिक होगी संपर्क उतने ही प्रभावशाली होंगे और दहेज की मांग भी उतनी ही अधिक होगी। वर के माता–पिता दहेज को लड़के की शिक्षा पर किये गये निवेश की वसूली का एक तरीका मानते हैं। दूसरा प्रोत्साहन है – माता–पिता के मन में असुरक्षा की यह आशंका कि शादी के बाद बेटा हो सकता है बुढ़ापे में उनका ध्यान न रखे। रोजगार के नये मार्ग खोलकर उदारीकरण ने शिक्षित मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग के लिए ऊपर की ओर गतिशीलता का रास्ता तैयार कर दिया है। तेजी से बढ़ते आय के ग्राफ ने अपने से ऊंची हैसियत के परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध जोड़ने के इच्छुक वधुओं के परिवारों के बीच वरों की मांग बढ़ा दी है।